श्रावण कृष्ण १३, सोमवार, दिनांक : २७-८-१९६२
काव्य - १ से ५, प्रवचन नं.-01

यह एक विषापहार स्तोत्र। भगवान परमात्मा की स्तुति, प्रशंसा और बहुमान करने का जो स्वरूप, उसे यहाँ स्तुति कहा जाता है। वास्तव में इसमें तो आत्मभगवान की स्तुति है। भगवान आत्मा अमृतस्वरूप है। उसकी पर्याय-प्रजा में राग-द्वेष की एकता ऐसा जहर, उसकी पर्याय में जहर है, अनादि का। उसे नाश करने का चैतन्यमूर्ति अमृतस्वरूप उसकी अन्दर में एकाग्रता की भक्ति उस जहर को नाश करने का उपाय है। सेठी!

ऐसे तो यह धनंजय महाकवि हो गये हैं। लगभग आठवीं शताब्दी में, आज से १२०० वर्ष लगभग पहले। मालवा में उज्जैन नगरी में। लो उज्जैन है या नहीं? यहाँ उज्जैन का कौन है? उज्जैन नगरी में यह महा (कवि) धनंजय एक सेठ थे। गृहस्थ थे। मानतुंग आचार्य के समय में उनके ये भक्त थे। समझ में आया? उन मानतुंग आचार्य की भक्ति करते थे। उसमें से स्वयं को भी महाकविपना और भगवान के भक्तराज ऐसी स्थिति उन्हें उत्पन्न हुई।

एक बार घर में उनके पुत्र को सर्पदंश हुआ। उस सर्पदंश से पुत्र बेभान हो गया। महिला को खबर पड़ी। सेठ को बुलाया। जाओ भाई भगवान की स्तुति में बैठे हैं तो बुलाओ, यह लड़का मर गया। मर क्या गया परन्तु जहर चढ़ा है इस सर्प का। स्वयं तो अन्दर विचार की धारा में, भगवान की भक्ति और आत्मा की भक्ति में इतने लवलीन थे कि उन्होंने यह भी सुना नहीं। अन्त में लड़के को उसकी माँ वहाँ मुर्दे को डाल गयी। मुर्दा अर्थात् सर्प डसा हुआ, बेभान पुत्र को डाल गयी। उसे खबर नहीं कि यहाँ लड़का है। स्वयं तो अन्दर विचारधारा में चढ़े और अन्दर में यह कविपने की शक्ति थी, इसलिए यह एक स्तोत्र बनाया है। यह स्तोत्र बना, इसलिए यहाँ बनाया, इसलिए यह जहर उतरेगा ऐसी भी वहाँ इच्छा नहीं थी। परन्तु ऐसा ही कोई मेल हो गया कि भक्ति में धुन में चढ़ते हुए यह रचना ४० श्लोक की हुई। उसमें भी जहाँ यह १४वाँ आदि श्लोक जहाँ शुरु हुआ, वहाँ उसका जहर उतर गया। पुत्र का जहर उतर गया। सर्प का जहर। समझ में आया? उस समय पश्चात् इसका नाम इस स्तोत्र का विषापहार नाम दिया गया है।

कहते हैं भगवान की स्तुति करते हुए... यह वास्तव में ऋषभदेव भगवान की स्तुति है। आद्यब्रह्मा, पहले तीर्थंकर की यह स्तुति है बाह्य में और अन्तर में आद्यब्रह्मा परमात्मा स्वयं। उसकी आद्य—शुरुआत साधकपने प्रगट करते हैं, इस प्रकार आत्मा की स्तुति का वर्णन किया है।

काव्य १

(उपजाति छन्द)

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त-
व्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्यः,
पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥

(वीर छन्द)

अपने में ही स्थिर रहता है और सर्वगत कहलाता।
सर्व सङ्ग-त्यागी होकर भी सब व्यापारों का ज्ञाता॥
काल-मान से वृद्ध बहुत है, फिर भी अजर-अमर स्वयमेव।
विपदाओं से सदा बचावे, वह पुराण पुरुषोत्तम देव!॥

अन्वयार्थ — (स्वात्मस्थितः अपि सर्वगतः) आत्मस्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक; (समस्तव्यापारवेदी अपि) सब व्यापारों के जानकार होकर भी (विनिवृत्तसङ्गः) परिग्रह से रहित; (प्रवृद्धकालः अपि अजरः) दीर्घ आयुवाले होकर भी बुढ़ापे से रहित तथा (वरेण्यः) श्रेष्ठ (पुराणः पुरुषः) प्राचीन पुरुष भगवान् वृषभनाथ! (नः) हम सबको (अपायात्) विनाश से (पायात्) बचावें—रक्षित करें।

भावार्थ — इस श्लोक में विरोधाभास अलङ्कार है। इस अलङ्कार में सुनते समय विरोध मालूम होता है, पर बाद में अर्थ का विचार करने से उसका परिहार हो जाता है। देखिए — जो अपने स्वरूप में स्थित होगा, वह सर्वव्यापक कैसे होगा ? यह विरोध है; पर उसका परिहार यह है कि पुराण पुरुष, आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा अपने स्वरूप में ही स्थित हैं, तथापि उनका ज्ञान सब जगह के पदार्थों को जानता है; इसलिए ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत है।

जो सम्पूर्ण व्यापारों को जाननेवाला है, वह परिग्रहरहित कैसे हो सकता है ? यह विरोध है; इसका परिहार यह है कि आप सर्व पदार्थों के स्वाभाविक अथवा वैभाविक परिवर्तनों को जानते हुए भी कर्मों के सम्बन्ध से रहित हैं। इसी तरह दीर्घायु से सहित

होकर भी बुढ़ापे से रहित हैं, यह विरोध है; इसका परिहार इस तरह है कि महापुरुषों के शरीर में वृद्धावस्था का विकार नहीं होता अथवा शुद्ध आत्मस्वरूप की अपेक्षा वे कभी भी जीर्ण नहीं होते। इस तरह इस श्लोक में विघ्न बाधाओं से अपनी रक्षा करने के लिए पुराण पुरुष से प्रार्थना की गयी है।

काव्य - १ पर प्रवचन

पहला श्लोक (काव्य)।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्त-
व्यापारवेदी विनिवृत्तसङ्गः।
प्रवृद्धकालोऽप्यजरो वरेण्यः,
पायादपायात्पुरुषः पुराणः॥

हे पुराणपुरुष! ऐसा कहकर शुरु किया है। सर्वज्ञ परमात्मा ऋषभदेव को भी इस काल के आद्यब्रह्मा धर्म के कर्ता। ऐसे वे पुराणपुरुष हैं। ऐसे देखें तो आत्मा पुराण पुरुष है। चैतन्यमूर्ति अनादि-अनन्त पुराण पुरुष, अनादि-अनन्त भगवान आत्मा है। उसे लेकर-लक्ष्यकर बात की है। '**पुरुषः पुराणः**' इसका अर्थ जरा टीकाकार ने पहला किया कि पुरुष प्रमाण है न? पुराणपुरुष श्रीमद् आदि ब्रह्मा। पुरिष इति अथो पुरुषः। आता है न भाई! पुरुषार्थसिद्धिउपाय में? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में। उसमें होगा संस्कृत टीका है न? हाँ, उसमें है। इसमें यह ही है न।

अपने चैतन्यपुर, आनन्दपुर में जो शयन करे, उसे पुरुष कहा जाता है। समझ में आया? विकार और पुण्य-पाप में शयन करके सो रहा है, उसे नपुंसक कहा जाता है। भगवान आत्मा अनन्त ज्ञानादि चैतन्यपुर में जो शयन अर्थात् एकाकार होकर रमे, उसे पुराण पुरुष ऐसे आत्मा को पुराण पुरुष कहा जाता है। भगवान को भी पुराण पुरुष से सम्बोधन करके भगवान की स्तुति करते हैं।

'स्वात्मस्थितः अपि सर्वगतः' हे नाथ! आप आत्मस्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक.... ऐसे देखो तो आत्मा के स्वरूप में ऐसे स्थित हो। ऐसे देखें तो विरोध

(दिखता है) । यह विरोध परिहार, यह जहर का विरोध है न, उसका परिहार करने को, यह विरोध परिहार अलंकार से यह स्तुति की है। हे भगवन्त! **आत्मस्वरूप में स्थित होकर भी सर्वव्यापक....** अर्थात् सबको जानने की सामर्थ्य है, (इसलिए) आप सर्वव्यापी हो। **सब व्यापारों के जानकार होकर भी....** हे नाथ! सब व्यापार जगत के द्रव्य-गुण-पर्याय के सबके जाननेवाले होने पर भी **परिग्रह से रहित हो।** कोई द्रव्य-गुण-पर्याय आपको पर की पकड़ में आती नहीं। किसी की पकड़ की नहीं। जाने सबको, पकड़ किसी की नहीं। समझ में आया ?

और **दीर्घायुवाले होकर भी बुढ़ापा से रहित....** हे नाथ! आपका आयुष्य भी बड़ा था, तथापि आपको वृद्धावस्था आयी नहीं थी। तीर्थंकर को वृद्धावस्था नहीं होती। जीर्ण-शीर्ण शरीर हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनादि का अनन्त अनादि काल का होने पर भी उसमें एक भी गुण और पर्यायों के जीर्ण-शीर्ण हुआ नहीं। आत्मा को बुढ़ापा लागू नहीं पड़ता। समझ में आया ? अनादि-अनन्त नित्यानन्द प्रभु! जो चाहे जितना काल हो तो उसमें जीर्ण लागू हो या जीर्णता होकर इस शरीर में कांचली (झुर्रियाँ) आदि पड़ जाती है न इस चमड़ी में ? इसी प्रकार द्रव्यस्वभाव में कहीं अपूर्णता या कहीं शिथिलता या कुम्हालाता होगा ? ऐसा का ऐसा चिद्घन भगवान (रहा हुआ है)। यह उसकी स्तुति करने को मैं खड़ा हुआ हूँ, ऐसा धनंजय कवि कहते हैं। और ऐसे ऋषभदेव भगवान.....

ऋषभदेव का वास्तविक अर्थ वह तो भगवान के नाम से पाते हैं। बाकी आत्मा को ऋष्यति इति, गच्छति इति परमपदं इति ऋषभः। समझ में आया यह कुछ ? यह भगवान ही आत्मा अपने परमपद को प्राप्त करता है, इसलिए इस आत्मा का नाम ही ऋषभ है। गजब भाई स्तुति इनकी! चैतन्य... बापू! परन्तु तेरी बात क्या करना ? पूर्णानन्द प्रभु एक समय में उसके अन्दर पूरा रूप ध्रुव है। उसमें विभाव और स्वभाव की अनेक पर्यायें प्रगटें, तथापि उसकी पकड़ और परिग्रह ध्रुव में नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा **दीर्घायुवाले होकर भी बुढ़ापा से रहित श्रेष्ठ प्राचीन पुरुष भगवान ऋषभनाथ....** श्रेष्ठ चैतन्य प्रभु भगवान पुराण पुरुष **हम सबको....** देखो! '**नः**' शब्द पड़ा है न ? **हम सबको**

विनाश से बचावे। यह विकारी पर्याय से बचावे। चैतन्यप्रभु को प्रार्थना करते हैं कि अरे... नाथ! जाग और पूर्ण तेरा स्वरूप इसमें कुछ पूर्ण-अपूर्णता (नहीं है)। तेरे खजाने में कोई कमी नहीं है। हमें, हे आत्मा! इस विकार का नाश कर और विकार से हमें बचा। भगवान की स्तुति से ऐसा कहने में आता है कि हे प्रभु! हमें विकार से बचाओ।

भावार्थ—श्लोक में विरोधाभास अलंकार है। इस अलंकार में सुनते समय विरोध मालूम होता है, पर बाद में अर्थ का विचार करने से उसका परिहार हो जाता है। देखिए—जो अपने स्वरूप में स्थित होगा, वह सर्वव्यापक कैसे होगा? यह विरोध.... विरोध.... विरोध। **यह विरोध है; पर उसका परिहार यह है कि पुराण पुरुष, आत्म-प्रदेशों की अपेक्षा अपने स्वरूप में ही स्थित हैं,....** भगवान भी अपने स्वरूप में स्थित है और यह आत्मा भी अपने असंख्य प्रदेश में ही अनादि स्थित है। **अपने स्वरूप में ही स्थित हैं, तथापि उनका ज्ञान सब जगह के पदार्थों को जानता है;....** भगवान का ज्ञान सबको जानता है। देखो! यह विरोध हो गया। स्थित यहाँ, जाने सबको। जाने सबको, स्थित यहाँ। इसी प्रकार प्रभु! तेरा स्वभाव तो पूर्ण असंख्य प्रदेश में व्यापक है। परन्तु तो भी उसकी सामर्थ्य तीन काल, तीन लोक को एक समय में विकल्प बिना जानने की सामर्थ्य है। ऐसा चैतन्य प्रभु अनादि से सर्वज्ञ परमात्मस्वभाव अपना विराज रहा है। यह इसका विश्वास करके अनुभव करना, यह उसकी भक्ति है। **इसलिए ज्ञान की अपेक्षा सर्वगत है।**

जो सम्पूर्ण व्यापारों को जाननेवाला है,.... जगत के चार गति के भव्य जीव और चौरासी के अवतार के सभी प्राणी और जड़ अनन्त, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय का परिणमन सब भगवान के ज्ञान में आ जाता है। व्यापारों से जानता है, सब पदार्थों को। **व्यापारों को जाननेवाला है, वह परिग्रहरहित कैसे हो सकता है?** सब व्यापार को जाने और परिग्रह नहीं। गजब भाई!

यह विरोध है; इसका परिहार यह है कि आप सर्व पदार्थों के स्वाभाविक अथवा वैभाविक परिवर्तनों को जानते हुए भी.... आपको स्वाभाविक और वैभाविक पर्याय का सम्बन्ध नहीं। वैसे ही कर्म का भी सम्बन्ध आपको नहीं। **इसी तरह दीर्घायु**

से सहित होकर भी बुढ़ापे से रहित हैं,.... लो! दीर्घायु हैं, तथापि आत्मा बुढ़ापा और वृद्धावस्था कभी नहीं आती। **यह विरोध है; इसका परिहार इस तरह है कि महापुरुषों के शरीर में....** महा उत्तम पुरुषों के शरीर में, महा उत्तम पुरुष ऐसे आत्मा में **वृद्धावस्था का विकार नहीं होता....** जीर्णता होती (नहीं)।

अथवा शुद्ध आत्मस्वरूप की अपेक्षा वे कभी भी जीर्ण नहीं होते। देखो! यह भी अर्थ किया है। शुद्ध चैतन्यस्वरूप में बहुत काल गया.... बहुत काल गया, इसलिए कुछ जीर्ण-शीर्ण कोई झूर्रियाँ-बुर्रियाँ पड़ती होगी गुण में? नहीं। **इस तरह इस श्लोक में विघ्न बाधाओं से अपनी रक्षा करने के लिए....** देखो! बात तो ऐसी है। पर्याय में विकार है और बाह्य में संयोग में प्रतिकूलता हो। इन दोनों से **रक्षा करने के लिए पुराण पुरुष से प्रार्थना की गयी है।** अनादि-अनन्त भगवान की प्रार्थना ऐसे परमात्मा तीर्थंकरदेव की प्रार्थना की है। समझ में आया? उनकी कथा में कुछ बात है अवश्य। अब सच्ची-खोटी कुछ (खबर नहीं)। भक्तामर है न भाई? भक्तामर का नहीं यह हरिभाई का पुस्तक? हरिभाई ने प्रकाशित किया है उसमें सब कथायें ली थीं।

वह स्वयं धनंजय ने एक नाममाला बनायी है, नाममाला। थोड़ी। और उस समय उज्जैन में भोज राजा थे न? क्या कहलाता है वह? राजा भोज, राजा भोज। उसे विद्वानों का बहुत शौक था। विद्वानों से मिलूँ। उसमें एक कालिदास जो कवि थे, उसे काली देवी प्रसन्न थी और बहुत बनाया हुआ। उसमें कोई गाँव का एक सेठ होगा। उसके छोटे लड़के ने धनंजय ने बनायी हुई नाममाला कण्ठस्थ की थी। लड़के ने। कण्ठस्थ की हुई और उस लड़के को लेकर राज में गया तो राजा से तो अनुकूल था न सबको? पधारो सेठ साहेब पधारो! ऐसा सम्मान दिया। लड़के को वह नाममाला कण्ठस्थ थी, वह बुलवायी। यह लड़का.... इतना क्या इसे आता है कुछ? कहे हाँ, एक नाममाला है, वह लड़के ने कण्ठस्थ की है। दूसरा तो अभ्यास नहीं। राजा कहे परन्तु यह नाममाला, इस नाम का ग्रन्थ मैंने अभी तक सुना नहीं। मैं तो सब ग्रन्थ का जाननेवाला हूँ। अभी चलते हैं इतने सब पण्डितों के। यह कौन है? साहेब! एक धनंजय नाम के आपकी नगरी में महाकवि समर्थ हैं। उसने एक नाममाला बनायी है। यह वह कालिदास को सहन हुआ

नहीं। यह बनिया क्या जाने फिर नाम को, विद्या को? समझ में आया?

ब्राह्मण उसके विद्या के पारंगत और वेद तथा वेद के जाननेवाले पारंगत हैं। बनियों को और विद्या कैसी? यह तो साहेब! हमारी नाम मंजरी है। हमारी 'नाम मंजरी' है। हमारी बनायी हुई है। समझ में आया? तब कहे, बुलाओ धनंजय को। बुलाया धनंजय को। कहे, क्या है यह? साहेब! मैंने बालक के लिये नाममाला बनायी है। ये लोग सिर पर हड़ताल फिराने के लिये, मेरा नाम मिटाने के लिये उसका नाम, नाम मंजरी दिया है। खोज करो उस वस्तु की। खोज करने पर तो निकली की ओहोहो! ऐसे पुरुष मेरे गाँव में और सेठ तुम मेरे दर्शन करने भी न आओ। मेरे पास नहीं आओ। अरे हम कौन हैं, तुम्हें गाँव में उसकी खबर हमें नहीं पड़े। साहेब! हमारे क्या काम? हमें तो हमारे धन्धे के साथ काम है। हमारे दूसरे के साथ (क्या काम हो)? आज आपके दर्शन हुए, इसलिए आपको यह बात करता हूँ।

इन धनंजय ने एकाकार भक्ति में लड़के के बेहोश पड़े हुए को प्रजा.... इसी प्रकार भगवान आत्मा की पर्याय बेहोश हुई है। समझ में आया? उसमें अन्तर से उल्लास आने पर, चैतन्यप्रभु भगवान की भक्ति में जुड़ने से उस बेहोश का नाश हो जाता है। उसमें स्तुति करते.... करते.... करते.... करते.... उन्हें इच्छा भी नहीं, वरदान माँगते नहीं, मुझे कुछ चाहिए नहीं। परन्तु भक्ति में सहज ऐसा निमित्त-निमित्त सम्बन्ध हो गया। बालक का जहर अपने आप बिना माँगे, बिना इच्छा (उतर गया).... सेठी! उतर गया। उसी प्रकार आत्मा के अन्दर के ज्ञान और ध्यान के उल्लास से बिना याचना के कि मुझे इसका नाश हो या ठीक (हो), ऐसा भी है नहीं। समझ में आया? यह मिथ्याभ्रान्ति और मोह के राग-द्वेष के भाव का सहज स्वभाव की धुन में उसका नाश होता है, ऐसा भगवान आत्मा विराजता है। भगवान की भक्ति में बाहर से भी नाश हुआ, ऐसा व्यवहार भी साथ में रहा है।

काव्य - २

परैरचिन्त्यं युगभारमेकः,
स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः,
किमप्रवेशे विशति प्रदीपः॥

जिसने पर-कल्पनातीत, युग-भार अकेले ही झेला।
जिसके सुगुण-गान मुनिजन भी, कर नहिं सके एक बेला॥
उसी वृषभ की विशद विरद यह, अल्पबुद्धि जन रचता है।
जहाँ न जाता भानु वहाँ भी, दीप उजेला करता है॥

अन्वयार्थ — (परैः) दूसरों के द्वारा (अचिन्त्यम्) चिन्तवन करने के अयोग्य (युगभारम्) कर्मयुग के भार को (एकः) अकेले ही (वहन्) धारण किये हुए तथा (योगिभिः अपि) मुनियों के द्वारा भी (स्तोतुम् अशक्यः) जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है - ऐसे (असौ वृषभः) वे भगवान् वृषभनाथ (अद्य) आज (मे स्तुत्यः) मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ, सो ठीक है। (भानोः) सूर्य का (अप्रवेश) प्रवेश नहीं होने पर (किम्) क्या (प्रदीपः) दीपक (न विशति) प्रवेश नहीं करता ? अर्थात् करता है।

भावार्थ — भगवन्! यहाँ जब भोगभूमि के बाद कर्मभूमि का समय प्रारम्भ हुआ था, उस समय की सब व्यवस्था आप अकेले ही कर गये थे। इस तरह आपकी विलक्षण शक्ति को देखकर योगी भी कह उठे कि मैं आपकी स्तुति नहीं कर सकता, पर आज मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ। इसका कारण मेरा अभिमान नहीं है, पर मैं सोचता हूँ कि जिस गुफा में सूर्य का प्रवेश नहीं हो पाता, उस गुफा में भी दीपक प्रवेश कर लेता है। यह ठीक है कि दीपक, सूर्य की भाँति गुफा के सब पदार्थों को प्रकाशित नहीं कर सकता; उसी तरह मैं भी योगियों की तरह आपकी पूर्ण स्तुति नहीं कर सकूँगा, फिर भी मुझमें जितनी सामर्थ्य है, उससे बाज क्यों आऊँ ?

काव्य - २ पर प्रवचन

दूसरा श्लोक। (काव्य)। बोलो लो।

परैरचिन्त्यं युगभारमेकः,
स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः।
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः,
किमप्रवेशे विशति प्रदीपः॥

लो! **'अद्य मे असौ वृषभो आदि ब्रह्मा'** इनकी स्तुति करता हूँ। आदि ब्रह्मा है न टीका में? आद्यब्रह्मा। कैसे थे वे भगवान? **दूसरों के द्वारा चिन्तवन करने के अयोग्य हैं।** हे भगवान! दूसरों के द्वारा आप चिन्तवन में आ सको, ऐसे नहीं हो। भगवान आत्मा भी कल्पना में, चिन्तवन में आ सके ऐसा नहीं है। वचनातीत है, कल्पनातीत है, मनातीत है। अकेला स्वसंवेदन आनन्दकन्द से ज्ञात हो, ऐसा है। ऐसा भगवान आत्मा और स्वयं पर परमात्मा, दोनों **दूसरों के द्वारा चिन्तवन करने के अयोग्य हैं।** **'युगभारम्' कर्मयुग के भार को अकेले ही धारण किये हुए....** हैं। तब कर्मयुग था और कर्मभूमि जब हुई, उस सब भरतक्षेत्र का भार आपने निर्वाह किया है। अकेले कल्पवृक्ष आदि जब गये, तब हे प्रभु! आपने सबका निर्वाह किया। उसी प्रकार आत्मा में अकेला चिन्तवन, अकेला आनन्द और स्वरूप की एकाग्रता होने पर, सब भाव, शुद्ध का भार आत्मा हो सकता है। यह विकल्प और निमित्त के भार नहीं कि वे आत्मा की शान्ति का वहन कर सकें। सेठी!

कर्मयुग के भार को अकेले ही धारण किये हुए.... वह आता है न कल्पवृक्ष न? अन्दर में वह है। **कल्पवृक्ष आदि अभावेन प्राणी आजीविका....** प्राणी को आजीविका नहीं हुई। भगवान के पास पुकार करते गये—हे प्रभु! यह सब यह क्या हुआ? आजीविका हमारे साधन कल्पवृक्ष सूखते हैं। हमें जो चीज़ चाहिए, वह उसमें आती या मिलती नहीं। वे भगवान के पास गये तो जीविका (कर दी)। ऐसे विकल्प आये और उस प्रकार का पुण्य का योग और निमित्त हुए। समझ में आया? देखो! उसमें भी उल्टा

लगाते हैं कितने ही कि भगवान ने पहले जगत को यह बताया। कृषिकर्म की इत्यादि विद्या आदि। समझ में आया? भाई! इस बात में ऐसी बात है कि उन्हें इस प्रकार की पर्यायें बाहर में होने की हों, यहाँ उस प्रकार का विकल्प था, उस जाति का कथन निकल गया। स्वयं तो कल्पवृक्ष में और अन्तर आत्मा की धुन में और एकाग्रता में हैं। परन्तु जगत के ऐसे पुण्य के कारण ऐसा हुआ। इसी प्रकार पवित्रता में भी वह कल्पवृक्ष समान भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता की धुन करने से महा चैतन्य असाधारण कारण प्रभु, यह उसकी भक्ति करने से कल्पवृक्ष के बाहर के साधन टूटे, सामग्री टूटी, शरीर जीर्णादि हुआ और पुण्य कम हुए परन्तु पवित्रता स्वभाव के आश्रय से प्रगट होती है कि उसे किसी की आवश्यकता नहीं पड़ती। समझ में आया? किसी की आवश्यकता नहीं, ऐसा भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द से भरचक भरपूर है।

यहाँ भगवान की व्यवहार से बात करते हैं। प्रभु! **'योगिभिः अपि' मुनियों के द्वारा भी जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है....** मुनि भी क्या करे? अन्दर समा गये। अन्दर एक ही उपाय। मुनि से भी आप की स्तुति (नहीं हुई)। तैतीस-तैतीस सागर तक स्वाध्याय के भाव किये। सर्वार्थसिद्धि के देव, परन्तु कुछ पार नहीं पड़ा। यह अन्दर समाने से पार (आता है), बाकी किसी प्रकार से पार पड़े, ऐसा नहीं है। ऐसे **मुनियों के द्वारा भी जिनकी स्तुति नहीं की जा सकती है - ऐसे वे भगवान् वृषभनाथ आज मेरे द्वारा स्तुति करने के योग्य हैं।** मुनियों द्वारा स्तुति होती नहीं, उनकी मेरे द्वारा स्तुति करनेयोग्य है। **अर्थात् आज मैं उनकी स्तुति कर रहा हूँ, सो ठीक है। सूर्य का प्रवेश नहीं होने पर....** जहाँ सूर्य न हो वहाँ क्या **दीपक प्रवेश नहीं करता?** दीपक से उजाला नहीं होता? सूर्य न हो तब तक दीपक से उजाला हो कैसे? हे भगवान! पूर्ण परमात्मा अन्तर में प्रगटरूप स्थित हो, वह तो बाहर आवे नहीं। परन्तु हमारी वर्तमान प्रगट पर्याय द्वारा, दीपक द्वारा हमारे चैतन्य की जाति की हम सम्हाल ले सकते हैं। समझ में आया? क्या **दीपक प्रवेश नहीं करता?**

हे भगवन्त! यहाँ जब भोगभूमि के बाद कर्मभूमि का समय प्रारम्भ हुआ था, उस समय की सब व्यवस्था आप अकेले ही कर गये थे। देखो! व्यवस्था की जा सकती होगी या नहीं? सेठी! यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध के व्यवहार के कथन का

महत्पना बताया है। **इस तरह आपकी विलक्षण शक्ति को देखकर योगी भी कह उठे कि मैं आपकी स्तुति नहीं कर सकता,....** ओहो! उनका व्यवहार, उनका निश्चय, उनका पुण्य, उनका शरीर परम औदारिक, उनकी वाणी मीठी-मधुर आदि किसी बात का मैं वर्णन कर सकूँ, ऐसी मुझमें ताकत नहीं है। इन्द्र भी हार गये, यह बाद में कहेंगे। समझ में आया? **आपकी स्तुति नहीं की जाती,....** हे भगवान ऋषभनाथ! **आज मेरे द्वारा स्तुति करने योग्य... सूर्य का प्रवेश नहीं हो पाता,....** दीपक का प्रवेश नहीं। ऐसे सर्व व्यवस्था जब आपने की, **इस तरह आपकी विलक्षण शक्ति को देखकर योगी भी कह उठे कि.... पर आज मैं आपकी स्तुति कर रहा हूँ।** मेरा जोर चैतन्यप्रभु में है और आपकी भक्ति में है। भले दूसरे न कर सके परन्तु मैं तो करने को तैयार हुआ हूँ। समझ में आया?

इसका कारण मेरा अभिमान नहीं है, पर मैं सोचता हूँ कि जिस गुफा में सूर्य का प्रवेश नहीं हो पाता,.... जिस गुफा में सूर्य का प्रवेश नहीं, **उस गुफा में भी दीपक प्रवेश कर लेता है। यह ठीक है कि दीपक, सूर्य की भाँति गुफा के सब पदार्थों को प्रकाशित नहीं कर सकता; उसी तरह मैं भी योगियों की तरह आपकी पूर्ण स्तुति नहीं कर सकूँगा, फिर भी मुझमें जितनी सामर्थ्य है, उससे बाज क्यों आऊँ?** बाज का अर्थ क्या है?

मुमुक्षु : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : इससे नहीं चूकूँगा। जितना मेरी शक्ति में है, उससे मैं चुकूँगा नहीं। बराबर मेरे पुरुषार्थ द्वारा आत्मा को प्राप्त कर लूँगा। भगवान! आपकी भी भक्ति करूँगा और मेरा स्वभाव पूर्ण है, उसे भी मेरे प्रयत्न द्वारा मैं प्राप्त करूँगा। ऐसा मुझे हर्ष और विश्वास है। ऐसा मुझे विश्वास है और ऐसा मुझे हर्ष है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अध्यात्म में ऐसा है मूल तो। परमात्मस्वभाव आत्मा का चिन्तवन... नहीं। तथापि मैं अन्तर साधक द्वारा, स्वभाव द्वारा उसका अनुभव करने तैयार हुआ हूँ। भले पूरा सूर्य प्रभु पूर्णानन्द की प्राप्ति केवलज्ञान की या सूर्य प्रभु आत्मा बाहर न आवे। परन्तु मेरी ज्ञान की स्वसंवेदनशक्ति द्वारा—दीपक द्वारा आपको मैं पहुँच जाऊँगा और आपके पूर्ण स्वभाव को प्राप्त करके मैं भी मोक्ष जानेवाला हूँ।

काव्य ३

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं,
नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं,
वातायनेनेव निरूपयामि॥

शक्र सरीखे शक्तिवान ने, तजा गर्व गुण गाने का।
किन्तु न मैं साहस छोड़ूँगा, विरदावली बनाने का।।
अपने अल्पज्ञान से ही मैं, बहुत विषय प्रकटाऊँगा।
इस छोटे वातायन से ही, सारा नगर दिखाऊँगा॥

अन्वयार्थ — (शक्रः) इन्द्र ने (शकनाभिमानम्) स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान (तत्याज) छोड़ दिया था किन्तु (अहम्) मैं (स्तवनानुबन्धम्) स्तुति के उद्योग को (न त्यजामि) नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं (वातायनेन इव) झरोखे की तरह (स्वल्पेन बोधेन) थोड़े से ज्ञान के द्वारा (ततः) उससे (अधिकार्थम्) अधिक अर्थ को (निरूपयामि) निरूपित कर रहा हूँ।

भावार्थ — जिस तरह छोटे से झरोखे में झाँककर उससे कई गुणी बड़ी वस्तुओं का वर्णन किया जाता है; उसी तरह मैं भी अपने अल्पज्ञान से जानकर आपके गुणों का वर्णन कर रहा हूँ। मुझे अपनी इस अनोखी सूझ पर हर्ष और विश्वास दोनों हैं, इसलिए मैं इन्द्र की तरह अपनी शक्ति को नहीं छिपाता।

काव्य - ३ पर प्रवचन

तीसरा। (तीसरा काव्य)

तत्याज शक्रः शकनाभिमानं,
नाहं त्यजामि स्तवनानुबन्धम्।
स्वल्पेन बोधेन ततोऽधिकार्थं,
वातायनेनेव निरूपयामि॥

इसका हिन्दी है इसमें, दूसरे ने किया हुआ। अपने उसमें भी है। स्तवनमाला है न! स्तवनमाला में यह दूसरे का किया हुआ है हिन्दी। एक स्तवनमाला है, उसमें यह दूसरे का किया हुआ है।

शक्र सरीखे शक्तिवान ने, तजा गर्व गुण गाने का।
किन्तु न मैं साहस छोड़ूँगा, विरदावली बनाने का।।
अपने अल्पज्ञान से ही मैं, बहुत विषय प्रकटाऊँगा।
इस छोटे वातायन से ही, सारा नगर दिखाऊँगा॥

देखो! यह हिन्दी है, तुम्हारे हिन्दीवालों को जरा (सरल पड़े)। '**शक्र**' अर्थात् देवेन्द्र। **इन्द्र ने स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान छोड़ दिया था....** हे नाथ! क्या स्तुति करूँ? कहाँ आपके गुण! मेरी दृष्टि में पूर्ण तो आते नहीं। मैं क्या स्तुति कर सकता हूँ? साधक है न? सम्यग्दृष्टि है। कहीं पूर्ण गुण प्रगट हुए नहीं। ऐसे शक्र अर्थात् सामर्थ्यवाला आत्मा, पर्याय में समर्थ होने पर भी, उस पूर्ण को पहुँच नहीं सकता, इसलिए कहते हैं, मैं स्तुति करने का विकल्प छोड़ देता हूँ।

ऐसे **इन्द्र ने स्तुति कर सकने की शक्ति का अभिमान छोड़ दिया था किन्तु मैं स्तुति के उद्योग को नहीं छोड़ रहा हूँ।** स्तुति का उद्योग नहीं छोड़ूँगा। अन्तर आत्मा भी स्तुति करते.... करते.... करते.... अन्तर में स्थिर हो गये और तब वे परमात्मपद को प्राप्त हुए। मैं भी अब स्तुति करते हुए पीछे नहीं हटूँगा। समझ में आया? आत्मा का स्वभाव पूर्ण परमात्मा, परमब्रह्म अखण्डानन्द की स्तुति और भक्ति में एकाग्र हुआ मैं, अब वापस नहीं हटूँगा। पूर्ण केवलज्ञान और परमात्मपद को प्राप्त करके ही, मेरा पूर्ण पुरुषार्थ तब प्राप्त होगा। इसके बिना अब वापस हटूँगा नहीं। लो! यह गृहस्थाश्रम में सेठ स्वयं भगवान की भक्ति करते हुए, इतना पुरुषार्थ उछालते हैं।

महाकवि भक्तराज हैं। धनंजय इनका नाम, देखो न धनंजय! एक ओर धन्य उनका आत्मा और जिसकी जय हुई। समझ में आया? प्रभु! इन्द्र ने स्तुति करने का अभिमान छोड़ दिया। **मैं स्तुति के उद्योग को नहीं छोड़ रहा हूँ। मैं झरोखे की तरह....** झरोखा होता है न, छोटी आँख ऐसे झरोखा देखने का। **झरोखे की तरह थोड़े से ज्ञान**

के द्वारा उससे अधिक अर्थ को निरूपित कर रहा हूँ। देखो! छोटे झरोखे में बैठकर इसने अर्थ पूरा नहीं लिया। पाठ में अन्तिम है, देखो! .....एक छोटे छिद्र में से मैं अनेक हाथी देख सकूँगा। छिद्र तो ऐसा छोटा होता है, परन्तु उसमें से अनेक गज, विशाल गज—हाथी उससे मैं देख सकूँगा। उसी प्रकार हे भगवान! आपकी स्तुति करते.... करते.... करते मेरा ज्ञान तो अल्प है, अल्प बुद्धि है, परन्तु विशाल गज—हाथी जैसा आत्मा, उसके पूर्ण गुण की हूँ स्तुति करने को तैयार हुआ हूँ। अल्प ज्ञान द्वारा महा सर्वज्ञ की स्तुति मैं करूँगा। सर्वज्ञ द्वारा सर्वज्ञ की स्तुति कहाँ होती है? मेरे अल्प ज्ञान द्वारा आपकी—परमात्मा की स्तुति करूँगा। विकल्प से-व्यवहार से बात है। निश्चय से अपने स्वभाव की स्तुति करूँगा। भले ज्ञान थोड़ा पाँच समिति, गुप्ति आदि थोड़ा हो। परन्तु केवलज्ञान का कन्द, अविनाभावी ऐसा चैतन्य, उसकी स्तुति और भक्ति करने को मैं तैयार हुआ हूँ। उसमें से पूरे आत्मा को देखूँगा। छोटे से छिद्र में गज दिखते हैं, उसी प्रकार अल्प ज्ञान में पूरा आत्मा दिखता है। समझ में आया?

भक्त भजन करे न? वह यह भजन। यह भजन है। अपने आता है न ३१वीं गाथा में? शिष्य ने पूछा नहीं? प्रभु! केवली की स्तुति किसे कहना? भगवान की स्तुति तीर्थंकर की किसे कहना? अरे! तीर्थंकर की स्तुति उसे कहते हैं कि तीर्थंकर अपना आत्मा, उसका अकेला ज्ञानघन, केवलज्ञान में एकाकार होकर आत्मा का सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करना, यह उसने भगवान की स्तुति की है। कहो, समझ में आया? वह विकल्प से व्यवहार है, वह है, परन्तु निश्चय यह सर्वज्ञ.... पूछा प्रश्न तीर्थंकर की स्तुति का, केवली (की स्तुति) का। उत्तर दिया आत्मा का। भूल की होगी? कुन्दकुन्दाचार्य ने भूल (की होगी)? परन्तु पूछते हैं कि प्रभु! भगवान की स्तुति किसे कहना? यह भगवान की स्तुति, यह भगवान आत्मा पूर्णानन्द निर्विकल्पोहं, उदासीनोहं। तीन काल -तीन लोक में सब जीव इस प्रकार से शुद्ध हैं, ऐसी अन्तर में दृष्टि का अनुभव होना (चाहिए)। यह उसे भगवान की स्तुति और केवली की स्तुति की कहलाती है। बाकी अकेले पुण्य बाँधे और शुभ हो और वह केवली की स्तुति है नहीं। व्यवहार की—पूछी भगवान की, वहाँ कही आत्मा की।

मुमुक्षु : स्वयं के मार्फत ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वय के मार्फत द्वारा स्वयं समझ में आता है। इसी प्रकार अपने मार्फत द्वारा ही यह भगवान के विकल्प से, व्यवहार से भक्ति होती है। वहाँ भगवान कहाँ अन्दर देते हैं और देता है कोई? कहो, समझ में आया इसमें?

भावार्थ :- जिस तरह छोटे से झरोखे में झाँककर उससे कई गुणी बड़ी वस्तुओं का वर्णन किया जाता है;.... लो! छोटे झरोखे में झाँककर **कई गुणी बड़ी वस्तुओं का वर्णन किया जाता है;....** अनन्त-अनन्त गुणे! ओहोहो! छोटी आँख इतनी देखो न बाहर की। पर्वत पर चढ़ा हो। बड़े पर्वत पर। २५-५० कोस का दिखता है। किससे? इतना भाग है वह नहीं, अन्दर ज्ञान की पर्याय की महत्ता है। ज्ञान की पर्याय में क्षेत्र अपेक्षित नहीं है कि इतने क्षेत्र से (इतना बड़ा दिखाई दे)। वास्तव में तो यहाँ नजर भी नहीं पड़ती बाहर। यह तो यह सब.... खड्डा कहाँ है वहाँ? आँख में छिद्र नहीं। समझ में आया? आँख में किसी को ऐसा लगे कि यहाँ से ऐसे छिद्र है, उसमें से देखता है, ऐसा नहीं है। वह तो बन्धन औदारिक प्रकृति के बन्धन के कारण, एक ऐसा एकाकार दल हो गया है। परन्तु ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य ऐसी है, एक इतने उघाड़ में भी जितना उसे नजर में आवे, उतना देख सके और ज्ञान की पर्याय में सर्वज्ञ ऐसा आत्मा है, उसे भी वह जानकर अनुभव कर सकता है। ऐसी उसकी ज्ञानपर्याय में सामर्थ्य है। अल्प ज्ञान में सर्वज्ञ को अनुभव कर सकता है, ऐसी सामर्थ्य है। समझ में आया? उस विकल्प में, शुभराग में, संयोग में वह सामर्थ्य नहीं है। उस ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य से परमात्मा अपनी भक्ति कर सकता है और पर की भी भक्ति का विकल्प आता है।

उसी तरह मैं भी अपने अल्पज्ञान से जानकर आपके गुणों का वर्णन कर रहा हूँ। मुझे अपनी इस अनोखी सूझ पर.... देखो! अनोख सूझ। दूसरी ही मेरी सूझ आयी इसमें। **इस अनोखी सूझ पर हर्ष और विश्वास दोनों हैं,....** हर्ष भी है और विश्वास भी है। **इसलिए मैं इन्द्र की तरह अपनी शक्ति को नहीं छिपाता।** देखो न! अन्तरात्मा, अन्दर में शक्ति में आता है और अभी धीरे... धीरे.... महाराज! मैं तो आत्मा में, पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्न-उद्यम हुआ, उसमें से वापस हटूँ, ऐसा नहीं है।

काव्य ४

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो,
विद्वानशेषं निखिलैरवैद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः,
स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥

तुम सब-दर्शी देव किन्तु, तुमको न देख सकता कोई।
तुम सबके ही ज्ञाता पर, तुमको न जान पाता कोई॥
'कितने हो' 'कैसे हो' यों कुछ, कहा न जाता हे भगवान्।
इससे निज अशक्ति बतलाना, यही तुम्हारा स्तवन महान॥

अन्वयार्थ — (त्वम्) आप (विश्वदृश्वा अपि) सबको देखनेवाले हैं किन्तु (सकलैः) सबके द्वारा (अदृश्यः) नहीं देखे जाते। आप (अशेषम् विद्वान्) सबको जानते हैं, पर (निखिलैः अवेद्यः) सबके द्वारा नहीं जाने जाते। आप (कियान् कीदृशः) कितने और कैसे हैं ? (इति) यह भी (वक्तुम् अशक्यः) नहीं कहा जा सकता, (ततः) इसलिए (तव स्तुतिः) आपकी स्तुति (अतिशक्तिकथा) मेरी असामर्थ्य की कहानी ही (अस्तु) हो।

भावार्थ — आप सबको देखते हैं, पर आपको देखने की किसी में शक्ति नहीं है। आप सबको जानते हैं, पर आपको जानने की किसी में शक्ति नहीं है। आप कैसे और कितने परिमाणवाले हैं ?—यह भी कहने की किसी में शक्ति नहीं है। इस तरह आपकी स्तुति मानो अपनी अशक्ति की चर्चा करना ही है।

इससे पहले के श्लोक में कवि ने कहा था कि इन्द्र ने भी आपकी स्तुति करने का अभिमान छोड़ दिया है, पर मैं नहीं छोड़ूँगा अर्थात् मुझमें स्तुति करने की शक्ति है, पर जब वे स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं और प्रारम्भ में ही उन्हें कहना पड़ता है कि सब में आपको देखने की, जानने की अथवा कहने की शक्ति नहीं है; जिसका तात्पर्य अर्थ यह होता है कि मुझमें भी उसकी शक्ति नहीं है, तब उन्हें भी अन्त में स्वीकार करना पड़ता है कि इन्द्र ने जो शक्ति का अभिमान छोड़ा था, वह ठीक ही किया था और मेरे द्वारा की गयी यह स्तुति भी मेरी अशक्ति की कथा ही हो।

काव्य - ४ पर प्रवचन

चौथा श्लोक (काव्य)।

त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो,
विद्वानशेषं निखिलैरवैद्यः।
वक्तुं कियान्कीदृश इत्यशक्यः,
स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु॥

तुम सब-दर्शी देव किन्तु, तुमको न देख सकता कोई।
तुम सबके ही ज्ञाता पर, तुमको न जान पाता कोई॥
'कितने हो' 'कैसे हो' यों कुछ, कहा न जाता हे भगवान्।
इससे निज अशक्ति बतलाना, यही तुम्हारा स्तवन महान॥

भो! जिन! विश्वं है न? विश्वं पश्यति इति विश्वदृष्टा, विश्वदृष्टा। है न पाठ में यह? विश्वदृष्टा। हे भगवान! आप समस्त वस्तु के दृष्टा हो। किसी के कर्ता-हर्ता नहीं और देखनेवाले पूरे विश्व—समस्त वस्तु के देखनेवाले हो।

आप सबको देखनेवाले हैं, किन्तु सबके द्वारा नहीं देखे जाते। देखो विरोध। सबको आप जानते हो परन्तु सबके द्वारा आप ज्ञात होओ, ऐसे आप आत्मा हैं नहीं। ऐसे भगवान तुम भी नहीं। विरोध किया। विरोध दोनों का विरोध। उसी प्रकार हमारे आत्मा में हे नाथ! विरोध हो, वह हमारे स्वभाव द्वारा इस विरोध का नाश होता है। ऐसा करके यह विरोध (अलंकार) किया है। **आप सबको जानते हैं, पर सबके द्वारा नहीं जाने जाते।** पहले देखने की बात थी। दृष्टा की बात थी। यह ज्ञान की बात है। **आप सबको जानते हैं, पर सबके द्वारा नहीं जाने जाते।** ऐसा विरोध आपके अन्दर समाहित है। कहो, समझ में आया?

आप कितने और कैसे हैं? यह भी नहीं कहा जा सकता,.... कल्पना से यह कहीं पार पड़े ऐसा नहीं है। **कितने और कैसे हैं?** अन्दर केवलज्ञान। उस केवलज्ञान का विषय अनन्त अपरिमित ऐसा जो एक समय का स्वभाव, ऐसा अनन्त-अनन्त गुण का

(स्वभाव)। ऐसे केवलज्ञान की पर्याय का समूह ऐसा ज्ञानगुण। एक गुण का विषय कितना! ऐसे अनन्त गुण का कितना? हे प्रभु! **आप कितने और कैसे हैं? यह भी अशक्य है, नहीं कहा जा सकता, इसलिए आपकी स्तुति मेरी असामर्थ्य की कहानी ही हो।** पहले कहा था कि इन्द्र ने अभिमान छोड़ दिया परन्तु मैं तो तैयार हूँ, ऐसा कहा था। वापस गुलाँट खाते हैं। प्रभु! आपकी स्तुति कर नहीं सकता, यही आपकी स्तुति है। आपकी स्तुति क्या करूँ? मैं अशक्य हूँ, ऐसा कहने से ही आपके गुणों की स्तुति हो जाती है। ऐसे आत्मा में मैं क्या करूँ? मेरे पूर्णानन्द प्रभु को कैसे पहुँचूँ। मेरी शक्ति नहीं। ऐसा कहने से पूर्णानन्द का माहात्म्य इसमें आ जाता है। समझ में आया? लो, यह अशक्य हूँ स्तुति (करने में), ऐसा करके भी पूर्ण स्वभाव ऐसा है, ऐसी स्तुति की है।

भावार्थ — आप सबको देखते हैं, पर आपको देखने की किसी में शक्ति नहीं है। सबमें शक्ति नहीं। सबमें वह शक्ति है कहीं? मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि को भी पूर्ण स्वरूप तो एकदम प्रगट नहीं होता। **आप सबको जानते हैं, पर आपको जानने की किसी में शक्ति नहीं है। आप कैसे और कितने परिमाणवाले हैं?** ओहो! यह ज्ञानगुण, यह दर्शनगुण कैसा? कौन? क्या यह? बड़े-बड़े पण्डित गोता खाते हैं कि यह वह अनन्त वस्तु! अपरिमित वस्तु! काल से, क्षेत्र से, भाव से, संख्या से सबको एक समय का ज्ञान, पार पा जाता है। क्या है? सिर घूम जाता है कितनों का। समझ में आया? ऐसे-ऐसे एक समय की पर्यायवाले, ऐसी अनन्त पर्याय की माला का धारक एक गुण, उसका विषय क्या और उसका सामर्थ्य क्या? यह कल्पना के बाहर, यह कल्पना और विकल्प से पार पड़े, ऐसा नहीं है। अकेले विकल्प के तर्क से करे, वह वस्तु ऐसे समझ में आये, ऐसी नहीं है।

कितने परिमाणवाले हैं?—यह भी कहने की किसी में शक्ति नहीं है। अपरिमित वस्तु, भगवान का स्वभाव अपरिमित। भगवान तो.... मर्यादित चीज़ को जानते हैं और अमर्यादित को जानते हैं। उसकी मर्यादा जाननेवाले की क्या कहना? वह तो अपरिमित, अमर्यादित चीज़ आत्मा है, और भगवान का आत्मा भी अमर्यादित प्रगट हुआ है। **इस**

तरह आपकी स्तुति मानो अपनी अशक्ति की चर्चा करना ही है। आपकी शक्ति की स्तुति करते हुए **अपनी अशक्ति की चर्चा करना ही है।** मेरी शक्ति नहीं, ऐसा कहकर ही आपकी स्तुति कर रहा हूँ।

इससे पहले के श्लोक में कवि ने कहा था कि इन्द्र ने भी आपकी स्तुति करने का अभिमान छोड़ दिया है, पर मैं नहीं छोड़ूँगा अर्थात् मुझमें स्तुति करने की शक्ति है, पर जब वे स्तुति करना प्रारम्भ करते हैं और प्रारम्भ में ही उन्हें कहना पड़ता है कि सब में आपको देखने की, जानने की अथवा कहने की शक्ति नहीं है;.... कहने की शक्ति नहीं। **जिसका तात्पर्य अर्थ यह होता है कि मुझमें भी उसकी शक्ति नहीं है,....** मुझमें भी वह शक्ति नहीं। पर्याय में कहाँ है? द्रव्य में जो पूरा तत्त्व पड़ा है, ऐसी पर्याय में शक्ति तो है नहीं।

तब उन्हें भी अन्त में स्वीकार करना पड़ता है कि इन्द्र ने जो शक्ति का अभिमान छोड़ा था, वह ठीक ही किया था.... वह ठीक ही किया था अर्थात् विकल्प द्वारा इतना माहात्म्य करने गया परन्तु उस विकल्प से माहात्म्य कहीं पार पड़ता नहीं। विकल्प को छोड़कर निर्विकल्प हो, तब उसका माहात्म्य ख्याल में आता है। **और मेरे द्वारा की गयी यह स्तुति भी मेरी अशक्ति की कथा ही हो। मेरी अशक्ति की कथा....** और आपकी अपरिमित शक्ति की कथा। **मेरी अशक्ति की कथा....** और आपके अनन्त-अनन्त गुण। देखो! यह परमात्मा धर्म का मूल सर्वज्ञ। उसका पूरा विवाद अभी उठा है।

केवलज्ञान ऐसी पर्याय का पिण्ड प्रभु। ऐसे अन्दर के द्रव्य का माहात्म्य आये बिना वह केवली ने क्या देखा और केवली ने क्या जाना? वह उसके समाधान में अन्दर बैठे नहीं। समझ में आया? कोई कहता नहीं था? अमुक विषय हमें बैठता नहीं। कौन कहता था? यह क्या है? कहता था न कोई सवेरे कोई? वह प्रश्न किया उसमें। नेमीचन्द मुखत्यार का नहीं था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चर्चा वह।

मुमुक्षु : ऊर्ध्वगमन स्वभाव।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊर्ध्वगमन स्वभाव होने पर भी एक समय में इतना कैसे चले ? हमें बैठता नहीं। आहाहा! सवेरे बात हुई थी न, भाई ? आज या कल ? रात्रि में बात हुई थी, रात्रि में।

अरे! उसके स्वभाव की शक्ति। ऊर्ध्वगमन गति का बहुत ऊँचा जाना, वह उसका महात्म्य है ? समझ में आया ? गति में बहुत आगे जाये, उसका माहात्म्य है ? एक परमाणु भी एक समय में चौदह ब्रह्माण्ड में नीचे से ऊपर चला जाता है और एक जीव भी तेजस और कार्मणशरीर लेकर अपनी गति से स्वयं चला जाता है और शरीर की गति से शरीर चला जाता है। वह चौदह ब्रह्माण्ड में एक समय में जाता है, वह कहीं उसका माहात्म्य नहीं। वह कहीं चीज़ का स्वरूप और समर्थता नहीं। भगवान एक समय में, ऐसे तीन काल तीन लोक जैसे हैं, वैसे होने से, हुआ और होगा सब एक समय में समा जाता है। ऐसा भगवान आत्मा और ऐसे परमात्मा यह उसका माहात्म्य, अन्तर्दृष्टि में आये बिना उसकी सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। अकेले भगवान के पास पूजा करे और यह करे और पूजा प्रतिदिन करे, हमेशा दर्शन करे। किसके हमेशा दर्शन ? हमेशा दर्शन आत्मा के किये ? सेठी! भगवान के दर्शन कर आये। परन्तु कहाँ दर्शन ? वह तो व्यवहार है, निमित्त है, शुभभाव है, वह आता है। परन्तु अन्तर दर्शन के माहात्म्य के स्वभाव का अन्तर में बैठे बिना, उस अन्तर दर्शन बिना पर का दर्शन नहीं हो सकता।

एक व्यक्ति ने पूछा था, दर्शनप्रतिमा अर्थात् क्या तुम्हारी ? दर्शन प्रतिमा अर्थात् क्या ? कहे, यह भगवान के दर्शन प्रतिदिन दर्शन करना, यह दर्शनप्रतिमा। हजारीमलजी! लो, ऐसे भी पड़े हैं अन्दर। भगवान के हमेशा दर्शन करना, वह दर्शनप्रतिमा। वह कहीं बात को समझता है ? अरे! (निज) भगवान के हमेशा दर्शन करना, वह दर्शनप्रतिमा। चिदानन्द प्रभु अखण्ड आनन्द जिसके विश्वास और हर्ष से बैठा। विश्वास और हर्ष से, हों, साथ में! आत्मा पूर्ण स्वरूप, यह निर्विकल्प है, ऐसी दृष्टि और हर्ष में यह विश्वास बैठा, उसने भगवान के हमेशा दर्शन किये। धर्मचन्दजी! वह व्यवहार, व्यवहार करके वह परमार्थ जो पूरा तत्त्व था, वह तो मानो लोप और गुम हो गया, रह गया। बाहर में

थोथा अकेली बात। शुभभाव और यह क्रिया और यह क्रिया। परन्तु वास्तविक जो तत्त्व है, वह तो गया पाताल में। यह हो गया ऊपर उफान में। फुव्वारा फूटे, वैसे यह बाहर की क्रिया हो गये इसके उफान। उभरा समझते हो? उफान-उफान-उफान। बाहर में उफान यह हो गया अकेला। पूरा चैतन्य प्रभु बड़ा, जिसके माहात्म्य की दृष्टि और महिमा हर्ष और आनन्द से जिसक विश्वास आवे, ऐसे तत्त्व रह गया दृष्टि में से और बाहर के ऊपर के माहात्म्य में सब समाहित हो गया।

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! मेरी अशक्ति, ऐसा वर्णन करते हुए आपकी शक्ति की अपरिमितता वर्णन में आ जाती है। क्या कहूँ? प्रभु! तेरी पूर्ण केवलपर्याय और पूर्ण आनन्द उसका क्या माहात्म्य करूँ? वह माहात्म्य क्या करूँ? नहीं कर सकता हूँ, इसमें तेरा माहात्म्य आ जाता है। समझ में आया? चार हुई।

काव्य ५

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै-
रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः,
सर्वस्यजन्तोरसि बालवैद्यः॥

बालक सम अपने दोषों से, जो जन पीड़ित रहते हैं।
उन सबको हे नाथ! आप, भवताप रहित नित करते हैं॥
यों अपने हित और अहित का, जो न ध्यान धरनेवाले।
उन सबको तुम बालवैद्य हो, स्वास्थ्य दान करनेवाले॥

अन्वयार्थ — (त्वम्) आपने (बालम् इव) बालक की तरह (आत्मदोषैः) अपने द्वारा किये गये अपराधों से (व्यापीडितम्) अत्यन्त पीड़ित (लोकम्) संसारी मनुष्यों को (उल्लाघताम्) निरोगता (अवापिपः) प्राप्त करायी है। निश्चय से आप (हिताहितान्वेषण-मान्द्यभाजः) भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता (मन्दता) को प्राप्त हुए (सर्वस्व जन्तोः) सब प्राणियों के (बालवैद्यः) बालवैद्य हैं।

भावार्थ — जिस तरह बालकों की चिकित्सा करनेवाला वैद्य अपनी भूल से पैदा किये हुए वात, पित्त, कफ आदि दोषों से पीड़ित बालकों को अच्छे-बुरे का ज्ञान कराकर, उन्हें निरोग बना देता है और अपने 'बालवैद्य' नाम को सार्थक बना लेता है; उसी तरह आप भी हित और अहित के निर्णय करने में असमर्थ बाल अर्थात् अज्ञानी जीवों को हित-अहित का बोध कराकर, संसार के दुःखों से छुड़ाकर स्वस्थ बना देते हैं। इस तरह आपका भी 'बालवैद्य' अर्थात् 'अज्ञानियों के वैद्य' यह नाम सार्थक सिद्ध होता है॥ ५॥

काव्य - ५ पर प्रवचन

पाँचवाँ।

व्यापीडितं बालमिवात्मदोषै-
रुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वम्।
हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः,
सर्वस्यजन्तोरसि बालवैद्यः॥

आहाहा! हे नाथ! आप बाल के वैद्य हो।

बालक सम अपने दोषों से, जो जन पीड़ित रहते हैं।
उन सबको हे नाथ! आप, भवताप रहित नित करते हैं॥
यों अपने हित और अहित का, जो न ध्यान धरनेवाले।
उन सबको तुम बालवैद्य हो, स्वास्थ्य दान करनेवाले॥

देखो! यह स्वास्थ्य आया। देखो! उस लड़के का स्वास्थ्य होने की तैयारी है। निश्चय और व्यवहार दोनों ऐसे जमते जाते हैं। ऐसे स्वास्थ्य अन्दर में बढ़ता जाता है और उसको बाहर में स्वास्थ्य बढ़ता जाता है। सहज ही। जहर उतरकर, बेहोश था वह एकदम जागृत हो गया। इसी प्रकार अनादि का मिथ्यात्वरूपी सर्प डसा है न? डंक मारा है मिथ्यात्व के जहर ने। यह बेहोशी चैतन्य भगवान की स्तुति करते-करते बेहोशी समाप्त हो जाये। जागती ज्योत चैतन्य है यह। ओहो! अकेला ज्ञान का पुंज और ज्ञान का

गंज है। ऐसी बेहोशी अनादि की (चली आयी है)। वह भगवान की स्तुति से जैसे बालक की स्तुति गयी। प्रजा है न वह? उसी प्रकार आत्मा की प्रजा मिथ्यात्व। मिथ्या.... प्रजा थी, सम्यग्दर्शन की पर्याय का उसने नाश किया था। समझ में आया? प्रवीणभाई!

भगवान की स्तुति से बालक। बालक.... ऐसे आप तो सर्व अज्ञानी के वैद्य हो। बाल-अव्रतरूप से भी एक बाल कहलाता है, अज्ञानरूप से भी बाल कहलाता है, मिथ्यादृष्टि को भी बाल कहा जाता है और अव्रत की अपेक्षा से अस्थिरतावाले को, चारित्र की अपेक्षा से भी बाल कहा जाता है। आप सबके वैद्य हैं। समझ में आया? इस मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व टालनेवाले, इस अव्रती के अव्रत और अस्थिरता के (दोष) टालनेवाले प्रभु! आप बालवैद्य हो। समझ में आया?

हे भ्रमन.... संस्कृत में है न शब्द? अन्दर में भी है देखो! ....बाल की चिकित्सा करनेवाले प्रभु आप हो, हों! इन बाल जीवों की चिकित्सा। उसे क्या है? कौन सा दोष है? कैसे लगा और कितना क्या हुआ? उसकी चिकित्सा करनेवाले, प्रभु! आप हो। इसी प्रकार आत्मा को कहते हैं कि हे आत्मा! यह राग और द्वेषादि की चिकित्सा, उसे जाननेवाले प्रभु! आप हो। और उसकी चिकित्सा करके उसे टालनेवाले, वह भी आप हो। समझ में आया?

आपने बालक की तरह.... अन्वयार्थ है। **अपने द्वारा किये गये अपराधों से अत्यन्त पीड़ित....** जीवों। अत्यन्त पीड़ित जीवों। **संसारी मनुष्यों को निरोगता....** **'रुल्लाघतां'** अर्थात् निरोगता। **प्राप्त करायी है।** प्रभु! आपने निरोगता प्राप्त करायी है।

आत्मभ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरु वैद्य सुजाण,
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहीं, औषध विचार ध्यान।

प्रभु यह, प्रभु यह बाल के वैद्य हैं। प्रभु! आप अज्ञान को नाश करनेवाले और अस्थिरता के भी प्रभु! यह आप ही नाश करनेवाले हैं। दूसरा जगत में कोई नाश करने की ताकत नहीं रखता। निमित्त से भगवान है और शुद्ध उपादान से आत्मा है। अज्ञान का नाश करनेवाला भी आत्मा और अस्थिरता तथा अव्रत का नाश करनेवाला भी प्रभु तू

आत्मा ही है। यह अस्थिरता परन्तु मेरा इतना कलंकपना नहीं। है न उदयभाव? है न उदयभाव? उतना असिद्धभाव, उसका भी नाश करनेवाले हे सिद्ध भगवान आत्मा! तू ही उसका नाश कर सकता है।

संसारी मनुष्यों को निरोगता प्राप्त करायी है। निश्चय से आप भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए सब प्राणियों के बालवैद्य हैं। क्या कहा? मोक्ष और मोक्ष का कारण। हितम् शब्द पड़ा है न भाई अन्दर? यह मोक्ष हित और मोक्ष का कारण, वह हित है। उसके विचार वह **भले-बुरे के विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए....** अज्ञानी, उसके जाननेवाले प्रभु तुम और उसके टालनेवाले भी तुम हो। है न? **'हिताहितान्वेषणमान्द्यभाजः' विचार करने में मूर्खता को प्राप्त हुए सब प्राणियों के बालवैद्य हैं।** मोक्ष और मोक्ष का कारण, वह हित। संसार और संसार का कारण, वह अहित। समझ में आया? यह स्वर्ग का कारण जो है, वह भी अहित।

मुमुक्षु : कथंचित्....

पूज्य गुरुदेवश्री : कथंचित्-फथंचित् इसमें है नहीं। देखो, इसमें लिखा है, देखो। संस्कृत टीका में पड़ा है। है? इसीलिए तो यह पुस्तक ली है जरा, उस टीका में कोई-कोई शब्द लिये जाते हैं। टीका कोई चन्द्रकीर्ति ने लिखी है। है न इसमें? कोई चन्द्रकीर्ति है कोई टीकाकार। भट्टारक हो या कोई भी हो। चन्द्रकीर्ति संस्कृत टीकाकार।

हे भगवन्त! आप मोक्ष, जो परम हित और उसका मार्ग भी परमहित। उसे नहीं प्राप्त ऐसे मूर्ख अज्ञानी, उसके ज्ञान को नहीं प्राप्त और संसार अहित तथा संसार के कारण मिथ्यादर्शन, अज्ञान, अहित को नहीं जाननेवाले ऐसे **मूर्खता को प्राप्त हुए सब प्राणियों के हे नाथ! आप बालवैद्य हैं।** कितने ही नहीं होते? बालवैद्य होते हैं अभी। देखे हैं? छोटे-छोटे लड़कों के वैद्य, यही करे, दूसरा कोई कर सके नहीं। बालवैद्य।

मुमुक्षु : मुम्बई में खास....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, खास उसके डॉक्टर हों। यह होता है बाल में क्या कहलाता है वह? लकवा। बाल लकवा होता है, यह होता है, उसके जाननेवाले वे बालवैद्य के बराबर वे ही होते हैं। उसी प्रकार भगवान, इस बालवैद्य के जाननेवाले आप हैं, हों!

आप बालवैद्य हैं। इस अज्ञानी के वैद्य आप हो। अज्ञानी के वैद्य। ऐसे कन्धा पकड़कर उसके कितने पल्स हैं और क्या है और कितना है, यह सब हैं, उसके जाननेवाले तुम हो। उसी प्रकार संसार का अहित प्रकार कैसा है उसके पास? उसके जाननेवाले तुम, प्रभु! टालनेवाले भी तुम। दूसरे इस जगत में बालवैद्य आप जैसे कोई दुनिया में है नहीं। समझ में आया?

जिस तरह बालकों की चिकित्सा करनेवाला वैद्य अपनी भूल से पैदा किये हुए.... भूल से। यह तो बात समझावे तो व्यवहार से समझावे न? **वात, पित्त, कफ आदि दोषों से पीड़ित....** यह बालक अपने वात, पित्त, और कफ से पीड़ित **बालकों को अच्छे-बुरे का ज्ञान कराकर,....** उसका सच्चा और खोटा। देख यह तूने खाया था, देख यह तू ऐसा था। तूने यह पिया था। यह बहुत आम खाये, इसलिए यह विस्फोटक हुआ था। होता है न? बहुत आम खाये न तो चमड़ी सफेद हो जाये। बहुत आम खाये न तो यह चमड़ी सफेद हो जाये फटकर। उसे वह बताता है कि इस लड़के को बहुत आम खिलाये लगते हैं। खट्टे।

ऐसे **पीड़ित बालकों को अच्छे-बुरे का ज्ञान कराकर, उन्हें निरोग बना देता है और अपने 'बालवैद्य' नाम को सार्थक बना लेता है;....** वह वैद्य भी बालवैद्य सार्थक है कि यह बालवैद्य है। बराबर है। **उसी तरह आप भी हित और अहित के निर्णय करने में असमर्थ....** अज्ञानी को हित का ज्ञान नहीं और अहित का ज्ञान नहीं। हे भगवान! हित किसे कहना और अहित किसे कहना? इस पुण्य को हित माने और संवर-निर्जरा में दु:खी होना माने। हम तो दु:खी हैं दु:खी। हित के कारण को अहित माने और अहित के कारण को हित माने।

अहित के निर्णय करने में असमर्थ बाल अर्थात् अज्ञानी जीवों को हित-अहित का बोध कराकर, संसार के दु:खों से छुड़ाकर स्वस्थ बना देते हैं। स्व-स्थ। शरीर में निरोगता ऐसी आपकी भक्ति में पुण्य होकर शरीर में निरोगता भी हो जाये और उसमें स्व-स्थ। जो पुण्य और पाप के विकल्प में अस्वस्थता थी, अस्वस्थ था, पुण्य-पाप में अटकना, वह अस्वस्थ था। हे भगवान! वह आपके ध्यान और ज्ञान द्वारा आत्मा स्वस्थ,

अपने स्वरूप में—स्व में स्थ हो सके, ऐसी ताकत प्रभु आत्मा तुम्हारे में है। भगवान में ऐसी ताकत है कि स्वस्थ करा दे, ऐसी ताकत है। लो! निमित्तरूप से ऐसा व्यवहार से कहते हैं। परमार्थ से भगवान आत्मा ही स्वस्थ होने की ताकत धराता है।

इस तरह आपका भी 'बालवैद्य' अर्थात् 'अज्ञानियों के वैद्य' यह नाम सार्थक सिद्ध होता है। आप भी एक अज्ञानी के वैद्य हो। लोग अज्ञान, मूर्खता अनादि से सेवन कर रहे हैं, उस मूर्ख के आप वैद्य हो। वह आपके भान द्वारा मूर्खता टलती है और आपने कहा, उससे मूर्खाई किसे कहना! देखो न! कितनी मूर्खता? परद्रव्य में क्या, परद्रव्य मुझे मदद करे, परद्रव्य मुझे नुकसान करे। मूर्खता का पार है? स्वयं अपने को नुकसान करे, उसके बदले परद्रव्य मुझे नुकसान करे, मैं परद्रव्य को सहायता करके सुधार दूँ। ऐसी जो मूर्खता, ऐसे बाल के आप प्रभु वैद्य हैं, हों! वह आप समझाओ तो समझे। नहीं तो समझे, ऐसा नहीं।

इसी प्रकार अन्तर के ज्ञानस्वरूप में प्रभु आप आत्मा चिदानन्द सामान्य चैतन्यज्योति, इस अज्ञान का जाननेवाला और उसके ऊपर जरा.... आता है न विष वृक्ष का? नियमसार में नहीं आता? परमपारिणामिक को भी कहते हैं। विषवृक्ष के वृक्ष को कुल्हाड़े समान हैं पारिणामिकभाव। नियमसार में आता है। उसमें भी आया नहीं अपने? विषवृक्ष नहीं आया यह? १४८ प्रकृति विष के वृक्ष। १४८ कर्मप्रकृति विषवृक्ष है। भगवान अमृतवृक्ष है। परन्तु उस विषवृक्ष को नाश करने में हे भगवान! आप ही समर्थ हो। ऐसा कहकर अपने आत्मा के गुण और भक्ति की है, विकल्प से भगवान की भी भक्ति की है। पाँच गाथायें (काव्य) हुई।

(**श्रोता** : प्रमाण वचन गुरुदेव!)